



ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(9): 33-42
www.allresearchjournal.com
Received: 08-07-2016
Accepted: 09-08-2016

प्रेमशीला

शोध छात्रा नेहरू ग्राम भारती
विश्वविद्यालय जमुनीपुर कोटवा,
इलाहाबाद

मध्यकाल में स्त्री की स्थिति और कबीर

प्रेमशीला

मध्यकालीन परिस्थितियों में स्त्री की दशा

मध्यकाल की सामंती व्यवस्था में स्त्री पराधीन थी। वह सामंती जड़ता की शिकार तो थी ही, धार्मिक और सामाजिक कानूनों द्वारा वैधता प्राप्त परम्पराओं एवं रुढ़ियों की जकड़बंदी की कैद में भी थी, लेकिन इतिहासकार प्रो० इरफान हबीब के अनुसार 'स्त्री जाति के इतिहास के विषय में हमारे पास उपलब्ध जानकारी बहुत कम है, जो है वह भी बहुत अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित है। इस संदर्भ में स्वयं स्त्रियों द्वारा दी गई सूचना भी बहुत कम है।' लेकिन स्त्री शोषण और दमन के जो भी संदर्भ-सूत्र और संकेत इतिहास से मिलते हैं वे बड़े भयावह हैं, और स्त्री-दुर्दशा की पूरी तस्वीर पेश करते हैं। किसी वर्ग या जाति को इतिहास से काटकर हाशिए में डाल देना, उसकी त्रासदी को बयान करने के लिए काफी होता है।

मध्यकाल में राज्य, धर्म, समाज आदि सभी संस्थाओं ने स्त्री के शोषण व दमन के साथ उसे भोग्य वस्तु में बदल दिया था। 'सामंती शासन के भयावह शोषण ने जब समाज को विजित-विजेता, धनी-निर्धन, स्वामी-सेवक के रूप में बदल दिया, तब समानता और स्वतंत्रता का उद्घोष नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गया। चारों ओर अमानवीय शोषण और अन्याय का अंधेरा छा गया था। मनुष्य जीवन और पशु जीवन में किसी प्रकार का अंतर नहीं रह गया था। राज्य करने और विलासितापूर्ण जीवन जीने की दुर्दमनीय इच्छा ने समाज को पतन के गर्त में ढकेल दिया था। उस समय नारी को चारदीवारी में बंद कर विलास की वस्तु बना दिया गया था। गांव के छोटे जमींदार से लेकर राजा-महाराजा तक में अनेक नारियों को पाने की इच्छा बलवती हो गई थी। अधिकतर लड़ाइयों का कारण नारी-प्राप्ति की बरबस इच्छा ही थी। जिस प्रकार ज्यादा बड़े राज्य, ज्यादा धन, जमीन, ज्यादा गुलाम और ज्यादा सैनिक रखने पर बड़ा राजा कहलाता था, उसी प्रकार ज्यादा स्त्रियाँ रखना भी बड़प्पन की श्रेणी में था। जाहिर है, इस प्रकार की पतनशील परिस्थितियों में नारी-जीवन अत्याचार-अन्याय का शिकार था। उनके सोचने के सारे रास्तों ओर देखने के समस्त गवाक्षों पर लज्जा का तथाकथित पहरा बैठाकर उसे निरीह और पालतू बना दिया गया था।¹

मध्यकालीन समाज खण्ड-खण्ड विभाजित था और उसमें भेदभाव का बोलबाला था। 'मध्य-युगीन जड़ता को बनाए रखने के लिए समाज में अनेक प्रकार के भेद किए गए थे। ऊँच-नीच का आधार धन के अलावा जन्मगत भी था। वर्ष-श्रम व्यवस्था शोषण को निरंतरता प्रदान करने के लिए चलाई गई थी और कठोरता के साथ उसका पालन एक आवश्यक समाज-व्यवस्था के रूप में कर दिया था।² वर्ण-व्यवस्था के अलावा दास प्रथा भी अपनी चरम अवस्था में थी। हिन्दू कथाओं को सम्पन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय कर के अपने घरों में रख लिया करते थे। कुलीन नारियों का अपहरण कराके अमीर लोग अपना मनोरंजन किया करते थे। मुहम्मद बिन तुगलक ने चीन सम्राट के पास भारतीय काफ़िरों में से एक-एक सौ स्त्री-पुरुषों को सौगात के रूप में भेजा था। इसके साथ ही ऐसे हिन्दू राजाओं का भी अभाव न था जो मुस्लिम महिलाओं, विशेषतः सैय्यद वंश की स्त्रियों को दासी-रूप में अपने यहाँ लाकर रखते थे।³

सामंतों में धन-ऐश्वर्य की सम्पन्नता से कामुक प्रवृत्ति अधिक थी। उनके लिए दो वस्तुएं प्रमुख थी- सुरा व सुंदरी। स्त्रियाँ क्रय-विक्रय और मनोरंजन की वस्तु बन गई थीं। विलासी प्रवृत्ति के प्राधान्य ने हिन्दुओं में पर्दे की प्रथा एवं बाल विवाह को बढ़ावा दिया। 'आईने अकबरी' में कहा गया है कि "लड़कियों का विवाह नौ या दस वर्ष की उम्र में हो जाता था।"⁴ आपसी वैमनस्य का दुष्प्रभाव नारी-जाति को ही भोगना पड़ा। जवान होते ही कन्या पर किसी दूसरे की दृष्टि न पड़े, इसलिए बाल विवाह किए जाने लगे। प्रकारांतर से बाल विवाहों को धार्मिक कवच प्रदान करते हुए उन्हें पुण्य का स्वरूप दे दिया गया। कहा जाने लगा कि रजस्वला होने से पहले कन्या का विवाह कर कन्यादान करने वाला ही पुण्य का भागी होता है।

Correspondence

प्रेमशीला

शोध छात्रा नेहरू ग्राम भारती
विश्वविद्यालय जमुनीपुर कोटवा,
इलाहाबाद

अतः इस तथाकथित पुण्य की लालसा में अबोध बालिकाओं के विवाह का प्रचलन हो गया। अपने समाज, पति एवं ससुराल से अनजान बालिका विवाहोपरांत न जाने कितने कष्ट भोगने को विवश थी। बचपन में विवाह होने के बाद एक लम्बा जीवन उसके समक्ष होता था। पति की मृत्यु के बाद वह वैधव्य का लम्बा यंत्रणापूर्ण जीवन जीने को मजबूर थी। विधवा-विवाह पर रोक होने के कारण वह आजीवन परिवार में अछूत की तरह जीवन जीती थी। परिवार का आवश्यक अंग होने के बावजूद उसे परिवार के किसी भी निर्णय में सहभागी होने का अधिकार नहीं था। शुभ कार्यों में उसे दूर रखा जाता था तथा उसका मुंह देखना अपशकुन माना जाता था। इस उपेक्षा की शिकार नारी को इन सब यंत्रणाओं से बचने के लिए 'सती' होकर स्वर्ग में पति-संसर्ग का सुख भोगने का लालच दिया गया। बहु-विवाह की परम्परा ने सती-प्रथा को और भी बढ़ावा दिया। परिणामतः मरने वाले पुरुष की प्रतिष्ठा उसके शव के साथ जलने वाली पत्नियों की संख्या से आँकी जाने लगी। अबोध बाल-विधवाओं को भी जबरन सती होने के लिए बाध्य किया जाता था। सती होने के समय रानियाँ घोड़े पर बैठकर सती होने के लिए प्रस्थान करती थीं। श्मशान में पहुँच कर वाद्य यंत्रों की तुमुल ध्वनि के साथ वे चिता में प्रवेश कर भस्म हो जाती थीं। प्रत्येक राजा के साथ इस प्रकार की अनेक पत्नियाँ, उप-पत्नियाँ, खवासने और दासियाँ सती होती थीं।⁶ प्रसिद्ध है कि सती प्रथा जैसी कठोर नीतियों का पालन सामंतों की विलास-दृष्टि से बचने के लिए अथवा पैतृक सम्पत्ति बचाने के लिए किया गया था। सामंतों की विलास-प्रवृत्ति से बचने के लिए राजपूत स्त्रियाँ जौहर जैसी प्रथा का सहारा भी लेती थीं। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पर्दा करती थीं। उच्च वर्ग में लम्बे समय तक पर्दा प्रथा चलती रही जबकि निम्न वर्ग की स्त्रियाँ पर्दा नहीं करती थीं। वे खेतों में काम करतीं और आजीविका कमाती थीं। पर्दा न करने के पीछे उनकी आर्थिक स्थिति थी। पर्दा प्रथा इस युग में नारी की लज्जा और चरित्र की आवश्यक अनिवार्यता के रूप में चल पड़ी, जिसके परिणामस्वरूप नारी को अपनी इच्छा से देखना एवं बोलना भी प्रतिबंधित कर दिया गया था। पुरुष वर्ग ने अपनी कायरता और भोग करने के एकाधिकार को बनाए रखने के लिए स्त्रियों पर इतने सारे प्रतिबंध लगा दिये और उसे समाज में सक्रिय भागीदारी की भूमिका के पीछे धकेल कर पशुवत् मूक जीवन जीने के लिए बाध्य कर दिया था।⁷ उच्च वर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा निम्न वर्ग की स्त्रियाँ भले ही आर्थिक स्थिति के कारण बाहर काम में जाने के चलते ऊपरी तौर पर स्वतंत्र नज़र आती हों, लेकिन गुलाम समाज की स्त्रियाँ गुलाम ही होती हैं। इस युग में दास प्रथा का भी प्रचलन था। इन्बतूता के विवरणों से पता चलता है कि राज्य द्वारा बहुत सी दासियों की व्यवस्था की जाती थी, जो राज्य की तरफ से दूसरे देशों के शासकों को भेंट स्वरूप भेजी जाती थीं। गांव के छोटे जमींदार से लेकर प्रभुत्व सम्पन्न वर्ग ने स्त्रियों का हरम बनाया हुआ था। स्त्रियाँ मात्र भोग्या थीं। अधिकतर युद्धों के मूल में किसी विशेष स्त्री की प्राप्ति की इच्छा होती थी।⁸

जाति-व्यवस्था शोषण एवं दमन की औज़ार थी, न केवल पुरुष के बल्कि स्त्री के भी। वह वर्चस्व स्थापित करने का भी अस्त्र थी। "जिस प्रकार जाति व्यवस्था ने समूचे शासक वर्ग को इस अर्थ में लाभ पहुंचाया कि उक्त व्यवस्था के अंतर्गत उसे निम्न जाति के लोगों का श्रम, सेवाएं तथा वस्तुएं सस्ते रूप में उपलब्ध हुए, ठीक उसी प्रकार स्त्रियों के श्रम का परिश्रमिक भी कम कर दिया गया। वस्तुतः उक्त व्यवस्था वर्ग-विभाजन को ही मजबूत करती थी। इसके परिणामस्वरूप जहां एक ओर समाज में निम्न वर्ग के लोगों का शोषण होता था, वहीं दूसरी ओर स्त्रियों को दबाकर रखा जाता था। ये दोनों एक दूसरे के पूरक थे। धर्म (जनता की अफीम) ने जिस प्रकार वर्ग विभाजन को मान्यता दी, उसी प्रकार नारी-शोषण को भी धार्मिक मान्यता की आवश्यकता थी। इसीलिए, सामाजिक संरचना में चाहे कोई पुरुष कितना ही

निम्न स्तर पर क्यों न हो, वह अपने को अपनी स्त्री से श्रेष्ठ समझता था और स्त्री को भी अपनी यह स्थिति स्वीकार करने के लिए भगवान की मर्जी का वास्ता दिया जाता था।"⁹ "पितृसत्ता और वर्ण-जाति स्तरीकरण, दोनों परिघटनाओं का उदय साथ-साथ ही हुआ है और दोनों का अन्योन्याश्रय-सा सम्बंध रहा है। जाति प्रथा की निरंतरता के दो मुख्य कारक हैं- पहला, स्त्री की अधीनता, उसके यौनत्व पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण, जिससे इस प्रथा को निर्बाध नया जीवन मिलता रहता है। जाति प्रथा की निरंतरता का दूसरा कारक है वर्चस्व की राजनीति में इसकी उपादेयता। यह मान्यता सही नहीं है कि प्राक्-औपनिवेशिक युग में जाति धार्मिक संस्था थी जिसका सम्बंध आंतर विवाह, गोत्र बहिर्विवाह, सोपानगत प्रस्थिति आदि से था, लेकिन ये मामले आज कमज़ोर पड़ गए हैं और यह एक राजनीतिक-आर्थिक संरचना बन गयी है। अब इसमें धार्मिक प्रभुसत्ता (रिचुअल पावर) का स्थान आर्थिक और राजनीतिक प्रभुसत्ता ने ले लिया है और इसने उन क्षेत्रों में प्रवेश कर लिया है जो इसके दायरे से बाहर हुआ करते थे। मेरे विचार से ऐसी समाजशास्त्रीय दृष्टि (कि जाति धार्मिक संस्था मात्र थी) जाति-व्यवस्था के केवल बाहरी रूप पर ही ध्यान देती है, इसके असली प्रकार्य को नज़र अंदाज़ कर देती है। दर-असल वर्चस्व की राजनीति इसके दायरे से बाहर कभी थी ही नहीं।"¹⁰ सुवीरा जायसवाल के उपरोक्त कथन से पूरी सहमति है कि जाति व्यवस्था शुरू से ही आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना (वर्चस्व की राजनीति) से जुड़ी रही है, लेकिन जाति व्यवस्था की आर्थिक और राजनीतिक वर्चस्व की संरचना को शुरू से ही धार्मिक प्रभुसत्ता (रिचुअल पावर) का भी समर्थन प्राप्त रहा है। धर्म इस व्यवस्था को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से वैधता प्रदान करता रहा है।

इस प्रकार स्त्री दासता को हिन्दू धर्म तथा इस्लाम दोनों में सामाजिक व्यवस्था के अंग के रूप में रेखांकित किया गया है। स्त्री के चरित्र पर सदैव संदेह किया गया है। मनु (II, 213.14) के अनुसार पुरुष के चरित्र को बिगाड़ना और उसे पथ भ्रष्ट करना स्त्री की प्रकृति का अंग है। जब उसकी रचना हुई है तो उसकी प्रकृति में अपवित्र कामनाएं, क्रोध, बेईमानी और दुश्चरित्रता रख दी गई थी। उसमें सदगुणों का उन्मेष पति के संसर्ग से आता है, इसलिए स्त्री की दोषपूर्ण अंतः प्रकृति को पुरुष की पराधीनता स्वीकार करने के लिए बुनियादी आधार माना गया। दिन-रात स्त्री को उसके परिवार के पुरुषों के आधिपत्य में रखा जाना चाहिए। कुरान के कतिपय वक्तव्य भी स्त्री को परम्परागत रूप से एक हीन लिंग के रूप में स्थापित करते हैं। स्पष्टतः पुरुष को सम्बोधित करते हुए कुरान कहती है : स्त्री तुम्हारे लिए खेत की तरह है, तुम जैसे चाहो, उसे जोतो। और II, 228 में यह भी घोषित किया गया है कि पद में स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है। ऐसे पवित्र और आसमानी शब्दों के नाम पर शेख अहमद सरहिंदी जैसे सूफ़ी ने घोषणा की कि खुदा ने मर्द पर मेहरबानी की है, इसलिए उसे चार शादियाँ करने का अधिकार प्राप्त है। वह तलाक़ द्वारा स्त्रियाँ बदल सकता है। खुदा ने स्त्री को सौन्दर्य बक्शा ही इसलिए है कि पुरुष उसका उपभोग करे। (शेख अहमद सरहिंदी, मक्तूबाते-इमाम ए रब्बानी, भाग एक, पत्र संख्या, 192, नवल किशोर लखनऊ, पृ0 190-91) स्त्रियों के सम्बंध में उसी सूफ़ी ने यह कहा है कि स्त्री इतनी दुष्ट प्रकृति की होती है कि व्यभिचार के हर मामले में प्रमुख रूप से उसी को दोषी मानना चाहिए, क्योंकि ऐसा दुष्कृत्य उसकी स्वीकृति के बिना सम्भव नहीं हो सकता। शेख अहमद सरहिंदी कहते हैं कि यही वजह है कि व्यभिचार को अपराध के धिक्कारते समय कुरान व्यभिचार करने वाली स्त्री को प्रथम और व्यभिचारी पुरुष को द्वितीय कोटि में रखती है। (वही, जिल्द III, पत्र संख्या, 41, नवल किशोर, पृ0 70)¹¹ स्त्री के सम्बंध में इसी तरह की भावना धर्मनिरपेक्ष जगत में भी व्यक्त होती रही। बादशाह जहांगीर

(1605-27) के नैतिक सलाहकारों ने उसे यह सलाह दी थी— 'बेटियों की मौत पर शोक मत करो। स्त्रियों की सलाह मत मानो। उनके छल-कपटपूर्ण आचरण के प्रति उदसीन मत रहो। इस सबसे यह निष्कर्ष निकालना गलत न होगा कि यदि स्त्रियों को कमजोर और मूर्ख समझा जाता था तो यह उनकी प्रकृति या स्वभाव का परिणाम नहीं, बल्कि पुरुष के अपने दमनात्मक आचरण का परिणाम था। प्रो० इरफान हबीब ने मध्यकाल की दो स्त्रियों का उल्लेख किया है जिन्होंने अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित किया। इसमें से एक अज्ञात कुलशील की जयमती नामक लड़की कश्मीर में हुई जिसे एक प्रसिद्ध नर्तकी ने पाला। वह पहले उच्चाला नामक राजकुमार की पत्नी बनी और बाद में धन के लालच में आनंद नामक शासक को पति के रूप में स्वीकार किया। आनन्द की मृत्यु पर सारी लाज-शर्म त्याग कर वह उच्चाला के पास पुनः चली गई तथा 1101-11 ई० में उसके राज्यकाल में उसकी पत्नी रही। कल्हण का इसे स्त्री से कोई सहानुभूति नहीं थी। उसके लगभग पांच सौ वर्ष बाद नूरजहाँ हुई। समकालीन इतिहासकार मोतमदरवान ने उसको याद करते हुए लिखा— 'बादशाह जहांगीर तो बार-बार कहता था कि मैंने तो राज्य पूरी तरह नूरजहाँ को सौंप दिया है। प्रो० इरफान हबीब सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अकबर तथा उसके समकालीनों में औरत के प्रति एक बदला हुआ दृष्टिकोण देखते हैं। बलपूर्वक सती रोकने के लिए अकबर का आदेश 1583 ई० अथवा उससे पहले आया था। एक राजपूत अधिकारी की मृत्यु के पश्चात् उसने व्यक्तिगत स्तर पर उस आदेश के अनुपालन को सुनिश्चित किया। प्रो० इरफान हबीब के अनुसार, "मध्यकाल में मुसलिम विवाह-प्रथाओं के सम्बंध में कुछ ऐसे मानक अनुबंधों का विकास भी हुआ जिनके तहत स्त्री को द्विपत्नी विवाह, रखैल तथा परित्यक्ता के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया गया। तत्कालीन मुगल प्रशासन की 1694-96 के एक 'टैक्सट' में एक आदर्श विवाह अनुबंध की शर्तों का उल्लेख हुआ है। लेकिन प्रो० इरफान हबीब द्वारा दिए गए इन उदाहरणों को अपवाद स्वरूप ही माना जाना चाहिए। उन्होंने खुद स्वीकार किया है कि "हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं में मूलभूत परिवर्तन की क्षमता हमेशा ही सीमित रही।"¹²

इस प्रकार धर्म ने स्त्री शोषण को वैधता प्रदान कर रखी थी। विभिन्न सम्प्रदायों व शाखाओं के रूप में धर्म का जो संजाल था, उसमें फँस कर स्त्री अपने शोषण और दमन के लिए मजबूर थी। तंत्र सम्प्रदाय के अंतर्गत स्त्री, विशेष रूप से शुद्र एवं निम्न वर्ग की स्त्रियों का भयानक शोषण हुआ। प्रो० रामशरण शर्मा ने तंत्र सम्प्रदाय की समाजार्थिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करके स्त्री-शोषण के संदर्भ को बड़े पैमाने पर उजागर किया है। तंत्र सम्प्रदाय का शाक्त, बौद्ध, जैन, शैव और वैष्णव सभी सम्प्रदायों तक फैलाव था।¹³ इसी तरह मंदिरों में 'देवदासी प्रथा' (धार्मिक वेश्या) के अंतर्गत निम्न जातीय स्त्रियों का पुरोहित तंत्र द्वारा शोषण किया जाता रहा और आज भी इसके छिटपुट उदाहरण सुनने को मिलते हैं। प्रियदर्शिनी विजयश्री ने देवदासी प्रथा के उद्भव के ऐतिहासिक आधार और उसके अंतर्गत स्त्रियों की दुर्दशा पर अब तक का सबसे गम्भीर ऐतिहासिक शोध किया है।¹⁴ डॉ० सूरज पालीवाल ने मध्यकाल में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के जाल में फँसी स्त्री के शोषण और उसकी दुर्दशा पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए है। उन्होंने लिखा है, "सामाजिक-राजनीतिक कारणों के साथ धार्मिक सम्प्रदायों ने भी नारी-शोषण को बढ़ावा देकर उसे घोर यंत्रणाओं भरे जीवन की ओर धकेल दिया था। इस प्रकार के सम्प्रदाय लमपट साधकों की विलासिता और इच्छापूर्ति के अलावा और कुछ नहीं थे। ये सम्प्रदाय 'सहज साधना' और 'महासुख' के नाम पर इस प्रकार की घृणित प्रवृत्तियों में लीन थे। दर्शन और भक्ति के मुलम्मे के साथ अपने मत को जनता में प्रचारित कर रहे थे, लेकिन जनता पर इसका खास प्रभाव नहीं था। इस प्रकार के सम्प्रदायों में नील

पट सम्प्रदाय, कापालिक सम्प्रदाय, बौद्ध सम्प्रदाय, सहज सम्प्रदाय, कौल मार्ग तथा पंथ आदि थे, जिन्होंने वाम साधना को अत्यधिक मात्रा में प्रश्रय दिया था। नील पट सम्प्रदाय में वेश्या, सुरा एवं काम का अत्यधिक महत्त्व था। इस सम्प्रदाय के साधक अत्यंत निचली श्रेणी के भोगपरक धर्म का प्रचार करते थे। मध्य युग में शाक्तमत भी प्रभावशाली हुआ। इसमें स्त्रियों के साथ संसर्ग प्रचलित था। इनकी उपासना में घोर अनाचार था तथा इनके साधक गुह्य रूप से साधना करते थे। इसी युग में शैव मत के एक साधना मार्ग के रूप में तथा वज्रयानी बौद्ध साधना के रूप में कापालिक मत प्रचलित था। ये लोग शक्ति के उपासक थे। मद्यपान तथा स्त्रियों के साथ विहार करने को साधना-पद्धति का एक अंग मानते थे। इस प्रकार शैव, बौद्ध दोनों साधना-पद्धतियों में स्त्री का अनुचित प्रयोग होने लगा था। बौद्ध भिक्षु संघ के नियमों का उल्लंघन कर पत्नियों, कन्याओं, तरुणियों और तरुण दासियों को पुष्पोहार भेजते थे तथा उनके साथ भोग-विलास करते थे। इनका मुख्य उद्देश्य धर्म के नाम पर कामोपासना बनकर रह गया था। तंत्रवादी साधना की सफलता शिव-शक्ति के मिलन में मानी जाती थी। कालांतर में यह शिव और शक्ति पुरुष और स्त्री मान लिये गए। कौल मार्गी साधना के साधक मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा और मैथुन के सेवन के द्वारा सिद्धि प्राप्त करते थे। पंच पवित्र की यह साधना-पद्धति आगे चलकर पंचमकार के रूप में परिणत हुई। अपने आविर्भाव काल में नाथ पंथ का उद्देश्य ब्रह्मचर्य, शारीरिक और मानसिक पवित्रता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, बाह्य आचरणों के प्रति निरादर, मद्य-मांस का पूर्ण बहिष्कार तथा आंतरिक शुद्धिमय जीवन था, किन्तु बाद में नाथ की मुक्ति का प्रसंग इसी वाम वासना की देन है।... इन सम्प्रदायों से स्त्री को क्या मिला। समाज में भी वह भोग की वस्तु समझी जाती थी और धार्मिक सम्प्रदायों में भी।¹⁵

इस तरह मध्यकाल के सामंती समय, समाज में राज्य एवं संस्कृति में स्त्री पराधीन थी। धार्मिक प्रभुसत्ता (रिचुअल पावर) ने उसका शोषण एवं दमन करने वाली आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक संरचना को वैधता और मजबूती दे रखी थी। कुछ अपवादों को छोड़ इस स्थिति में परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं दिख रही थी। जबकि इसी युग में इसी समय यूरोप स्त्री के पक्ष में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। प्रो० इरफान हबीब ने इस संदर्भ में लिखा है कि ".... हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं में मूलभूत परिवर्तन की क्षमता हमेशा ही सीमित रही। हमें यहाँ आधुनिक यूरोप से प्राप्त होने वाले विचारों के महत्त्व को स्वीकार करना चाहिए। वहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण और बुनियादी बात यह हुई कि स्वयं स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज बुलंद की। नारी-मुक्ति 1789 ई० की फ्रांसीसी क्रांति का एक अविभाज्य अंग था। 1790 ई० में लड़के और लड़की को विरासत में समान अधिकार मिले। 1792 ई० में तलाक के प्रावधान में पत्नी को बड़ी सीमा तक संरक्षण प्रदान किया गया था। 1793 और 1794 ई० में लड़के तथा लड़कियों के लिए अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। वस्तुतः मानवता के विकास के इतिहास में यह एक अभूतपूर्व प्रस्थान बिन्दु था।"¹⁶ मध्यकालीन भारत में इस तरह का एक अभूतपूर्व प्रस्थान बिन्दु का अवसर भक्ति आंदोलन के रूप में आया जिसके ऐतिहासिक योगदान को सतही दृष्टिकोण के बजाय वस्तुनिष्ठ गहराई के साथ परखने की ज़रूरत है।

(ख) कबीर की स्त्री-दृष्टि

भक्ति आंदोलन सामंती समाज एवं संस्कृति का विकल्प रचने में भले ही सफल न हुआ हो, किन्तु उसमें हस्तक्षेप करके उसके ढांचे को कमजोर अवश्य किया होगा। भक्ति आंदोलन तत्कालीन ऐतिहासिक सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों की उपज था और उसके निर्माता ऐतिहासिक व्यक्ति थे। भक्ति आंदोलन के भीतर का निर्गुण-सगुण का संघर्ष (जिसका साक्ष्य सूर और तुलसी की

कविता है) भक्ति आंदोलन की सामंती व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई को कमजोर किया होगा। मुक्तिबोध ने भक्ति आंदोलन की विफलता को निर्गुण-सगुण संघर्ष के अंतर्विरोध में देखा है। यह संघर्ष सगुण वैष्णव मार्गियों द्वारा निर्गुण के समानांतर अपने को स्थापित करने की कोशिश का परिणाम रहा होगा जो स्वाभाविक था। लेकिन इस संघर्ष से संत आंदोलन के निर्माता रैदास और कबीर का ऐतिहासिक व्यक्तित्व और दार्शनिक विचारधारा को विकृत करने की कोशिश हुई है। रैदास और कबीर के व्यक्तित्व और विचार धारा को विकृत करने वाले मिथक, किंवदंतियाँ और उनके नाम से रची गई विभिन्न प्रक्षिप्त रचनाएँ इसी कोशिश की प्रतिफल थीं। हिन्दी के विद्वान् आलोचकों ने इन मिथकों, किंवदंतियों और प्रक्षिप्त रचनाओं को ऐतिहासिक जांच-परख नहीं की। उल्टे इनके आधार पर अपनी महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ की। इससे संत रैदास और कबीर के व्यक्तित्व, मनोगठन और विचारधारा को समझने में कठिनाइयाँ ही पैदा हुई। इनमें से एक कठिनाई इन संतों की स्त्री-दृष्टि की पहचान करने की है। यों तो, निर्गुण और सगुण मार्गियों की सामाजिक और दार्शनिक दृष्टि में भारी अंतर है, लेकिन स्त्री-दृष्टिकोण के मुद्दे पर दोनों की सामाजिक दृष्टियों के फर्क को मिटा दिया जाता है और दोनों को समान रूप से स्त्री-विरोधी खाते में डाल दिया गया है।

रैदास और कबीर की समकालीन और बाद की पीढ़ी पढ़ी लिखी नहीं थी, फलतः वह अपने संतों के आंदोलन और साहित्य की विरासत का अभिलेखीकरण कर (डाक्यूमेंटेशन) ऐतिहासिक रूप से सुरक्षित नहीं कर सकी। परिणामस्वरूप इन संतों के व्यक्तित्व और विचारधारा को विभिन्न धर्मानुयायियों द्वारा आत्मसात करने का प्रयत्न किया गया।¹⁷ यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व और विचारधारा को ऐतिहासिक नहीं रहने दिया। रैदास-कबीर को वैष्णव परम्परा के भीतर लाने के लिए रामानंद नाम के मिथकीय चरित्र को गढ़ कर आत्मसातीकरण की प्रक्रिया को अंतिम परिणति तक पहुंचाया गया। जबकि **इतिहासकार सतीशचंद्र** ने रामानंद को अस्पष्ट व्यक्तित्व और उसके जीवन एवं रचनाओं के बारे में इतिहास की अनभिज्ञता बताई है।¹⁸ कबीर के अध्ययनकर्ता **डेविड एनो लारेनजेन** ने भी लिखा है कि 'कबीर और रामानंद में बहुत कम सम्बंध है, और कबीर के रामानंद का शिष्य होने का दावा बाद का विकास है।'¹⁹ हिन्दी आलोचना इन ऐतिहासिक तथ्यों को कोई महत्त्व नहीं दिया और मिथकों, किंवदंतियों और प्रक्षिप्तों को ऐतिहासिक तथ्यों की तरह दोहराती और स्थापित करती रही।

किंवदंतियों कुछ भी कहें रैदास चमार जाति के और कबीर जुलाहा जाति के थे और उनका गुरु स्वयं में उनकी 'ज्ञान' था। बुद्ध, महावीर जैन और शंकराचार्य की तरह गृह त्यागी नहीं, पारिवारिक, घर-बारी और संसारी संत थे। स्त्री उनके यहां न 'नरक का द्वार' थी और न ही 'स्वर्ग प्राप्ति की साधन' दूसरे शब्दों में, स्त्री की यौनिकता उनके आध्यात्मिक मार्ग में खतरा न थी। वर्ण-जाति के विरोध में थे, यही सामाजिक दृष्टि उन्हें स्त्री के संदर्भ में वर्णवादियों से पृथक करती है। ऊपर हम सुवीरा जायसवाल के हवाले से बता आए हैं कि पितृसत्ता और वर्ण-संस्था दोनों संस्थाएं साथ-साथ पैदा हुई हैं और वर्ण-संस्था स्त्री की पराधीनता पर निर्भर है। स्वर्ग, नरक, पाप-पुण्य की वैदिक, पौराणिक एवं शास्त्रीय शब्दावली से उनका कोई लेना-देना नहीं। अपनी सामाजिक दृष्टि के अनुरूप कबीर अपनी स्त्री-दृष्टि में अपने समकालीन सगुण भक्तों से एकदम भिन्न और स्वतंत्र नजर आते हैं। लेकिन हिन्दी आलोचना कबीर की स्त्री विषयक दृष्टि को निर्धारित करने हेतु कबीर के नाम से प्रचलित प्रक्षिप्त रचनाओं का सहारा लिया है। इतना ही नहीं जैसे कबीर के निर्गुण ज्ञान को वैष्णव शब्दावली में समझने की कोशिश की गई है वैसे ही कबीर की स्त्री-दृष्टि को द्विज पितृसत्ता की शब्दावली में ही पहचानने का प्रयत्न किया गया है।

वैसे हिन्दी आलोचना ने मध्यकाल के संतों-भक्तों की स्त्री-दृष्टि पर बहुत ही कम विचार किया है। हाँ, मीरा के काव्य पर बहुत गम्भीर अध्ययन हुए हैं, फिर भी मीरा की स्वतंत्रता की आकांक्षा के मूल उत्स को पहचानने की कोशिश कम हुई है। हिन्दी के जिन आलोचकों ने कबीर की स्त्री-दृष्टि पर विस्तार से विचार किया, उनमें **डा० मैनेजर पांडेय**, **डा० सूरज पालीवाल**, **डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल**, **डा० धर्मवीर**, **कुमकुम संगारी**, **कँवल भारती** आदि हैं। इनमें डा० धर्मवीर और कँवल भारती को छोड़कर लगभग सभी ने कबीर की प्रक्षिप्त रचनाओं के आधार पर उन्हें स्त्री-विरोधी या पितृसत्ता को मजबूत करने वाला सिद्ध किया है। अब इन आलोचकों के मतानुसार कबीर की स्त्री-दृष्टि पर यहाँ विचार किया गया है :

डा० मैनेजर पांडेय ने मध्यकाल के संत-भक्त कवियों कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, और मीरा की स्त्री-दृष्टि की तुलना करते हुए कबीर, जायसी एवं तुलसी की स्त्री-दृष्टि को सामंती रूढ़ियों में जकड़ी हुई और सूर तथा मीरा की स्त्री-दृष्टि को प्रगतिशील एवं क्रांतिकारी माना है। डा० पांडेय का कहना है कि "यद्यपि कबीर की सामाजिक चेतना अत्यंत प्रखर है। लेकिन स्त्री-सम्बंधी विचारों पर उस युग की गहरी छाया है।"²⁰ डा० मैनेजर पांडेय प्रमाणस्वरूप कबीर के नाम से प्रचलित निम्नलिखित दोहा को उद्धृत करते हैं :

**नारी कुंड नरक का, बिरला थामे बाग।
कोई साधु जन ऊबरे, सब जग मुआ लाग।²¹**

डा० पाण्डेय कबीर को उनके स्त्री-सम्बंधी विचारों में तुलसी के समकक्ष पाते हैं, "सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक विश्वास सम्बंधी कबीर के अधिकांश विचारों से तुलसीदास असहमत हैं, लेकिन स्त्री के बारे में दोनों की राय लगभग एक जैसी है। कबीर की तरह तुलसी भी स्त्री को अवगुण की खान और बुराइयों की जड़ समझते हैं।"²² उनके अनुसार "कबीर और जायसी सती-प्रथा को महिमामंडित करते हैं।"²³ इसलिए डा० मैनेजर पांडेय निष्कर्ष निकालते हैं, "इस तरह कबीर जायसी और तुलसी के काव्य में स्त्री सामंती रूढ़ियों में जकड़ी हुई है।"²⁴ इसके विपरीत डा० पांडेय के अनुसार, "सूरदास के काव्य में स्त्री का सहज, स्वतंत्र और तेजस्वी रूप मिलता है, जो प्रेम के अलावा लोक और वेद के किसी बंधन को नहीं मानती। 'सूरसागर' में केवल एक जगह सती-प्रथा का उल्लेख है। वहाँ भी उस प्रथा की भर्त्सना ही है और उसके जघन्य रूप के त्रासद प्रभाव की ओर संकेत भी।"²⁵ इसी तरह डा० पांडेय की दृष्टि में मीरा का जीवन और काव्य उस काल के समस्त कवियों की स्त्री-सम्बंधी मान्यताओं का प्रतिकार है और प्रत्युत्तर भी। उनके अनुसार, "स्त्री के बारे में मीरा का दृष्टिकोण बाकी भक्त कवियों से एकदम अलग है। उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है। वह राठौड़ राजकुल की बेटा और सिसोदिया राजकुल की बहू थीं, जहाँ सती-प्रथा का चलन था। लेकिन विधवा होने के बाद मीरा कुल की रीति और लोक की रूढ़ि के अनुसार सती नहीं हुई। वह लगातार लाँछन, अपमान और यातना सहती हुई स्वतंत्र रहकर कृष्ण भक्त बनीं। उन्होंने निर्भय होकर भ्रामक युग-धर्म और लोक-भय का सामना करते हुए स्पष्ट कहा :

भजन करस्यां सती न होस्यां मन मोहयो घण नामी।²⁶

ऐसा नहीं हो सकता कि डा० मैनेजर पांडेय को कबीर की स्वतंत्र दार्शनिक मान्यताओं और शब्दावली की जानकारी न हो कि कबीर स्वर्ग-नरक की अवधारणा और शब्दावली में विश्वास नहीं रखते।

कबीर इन्हें सिर से नकार देते हैं, फिर इन अवधारणाओं को पुष्ट करने वाली पंक्तियाँ कबीर के नाम पर प्रक्षिप्त रचनाएँ ही कही जाएंगी। प्रक्षिप्त रचनाओं के आधार पर कबीर की स्त्री-दृष्टि का निर्णय करना किसी भी आलोचना-दृष्टि की बुनियादी खामी और ही कही जाएगी।

आलोचक डा० सूरज पालीवाल ने भी कबीर की स्त्री-दृष्टि की परख के संदर्भ में डा० मैनेजर पांडेय से मिलते-जुलते निष्कर्ष निकाले हैं। वे लिखते हैं, "यह तय है कि नारी को भोग की वस्तु बना देने वाला समाज उसे बंधनों में जकड़ने के लिए अनेक प्रकार के मायाजाल का प्रयोग करता रहा होगा। घर परिवार से लेकर मठों तक में नारी स्वतंत्र नहीं थी, लेकिन विचित्र बात यह है कि सामंती शासन, वर्ण व्यवस्था नया धार्मिक कठ मुल्लावाद का विरोध करने वाले कबीर आदि कवियों ने भी, जो कि प्रकारांतर से समाज सुधारक भी कहलाए, नारी की निंदा ही की है। उसे माया, ठगिनी, सर्पिणी और न जाने कितने कुत्सित रूपों में देखने का कार्य सगुण भक्त कवियों की तरह कबीर आदि संतों ने भी किया। सगुण कवियों को हम कुछ देर के लिए इसलिए भी छोड़ सकते हैं क्योंकि वे जिस समाज की स्थापना कर राम और कृष्ण के अवतारों की लीलाओं की विशद प्रशंसा करने में लगे हुए थे, वह समाज मध्य युग के समाज से अलग नहीं था। तुलसी के राम राजा है, तो कृष्ण नौ लाख गायों के स्वामी। दोनों ही सामंत हैं, एक परम्परागत सामंती शासन के राजा हैं, तो दूसरे गोप संस्कृति के पालक। दोनों ही अपनी परम्परा और परिवार की नैतिकता के प्रति सजग हैं। लेकिन कबीर तो सारी रूढ़ियों का विरोध करते हैं, नारी विरोधी रूढ़ियों का विरोध क्यों नहीं कर पाते? असल में मध्य युगीन जड़ता में जकड़ी, उपेक्षित, लाक्षित और अमानवीय जीवन जीती नारी की मुक्ति की चिन्ता इन्हें थी ही नहीं। इसलिए उसे माया, ठगिनी एवं सर्पिणी आदि नाम देकर और अधिक लांछित किया गया। यहां एक बात विशेष रूप से स्पष्ट होनी चाहिए कि भक्त कवियों की नारी-विषयक मान्यता को, उनके वक्तव्यों द्वारा ही पहचाना जाना चाहिए। सगुण-निर्गुण सभी एक स्वर से नारी-निन्दा में होड़ लगाए हुए थे। जो जितनी निंदा करता था, नये-नये रूपों में उसे समाज और धर्म के लिए अमंगलकारी प्रतिपादित करता था, वही बड़ा कवि और साधक कहलता था। यह वाम साधना की प्रतिक्रिया भी हो सकती है। भक्त कवियों ने यह माना हो कि नारी पूर्ववर्ती सम्प्रदायों को भ्रष्ट करने वाली थी, इसलिए उसका विरोध करना हमारा कर्तव्य है।" ²⁷ डा० सूरज पालीवाल ने आगे लिखा "भक्त कवियों ने अपने वक्तव्यों द्वारा नारी को माया, ठगिनी, सर्पिणी, झूठी, अमंगलकारी एवं दुर्बुद्धि बताया है। सगुण भक्त कवियों ने अपने जिन चरित्रों की सर्जना की है, वे भी पुरुष-प्रधान समाज में बराबरी की अधिकारिणी नहीं हैं। तुलसी ने सीता, कौशल्या, कैकेयी, मंदोदरी और सुलोचना को विशेष रूप से चित्रित किया है। लेकिन इनका कोई व्यक्तित्व पुरुष के समान है, यह कोरी कल्पना है। सीता का निर्वासन, कौशल्या की इच्छा के बिना उसके पुत्र को चौदह वर्ष का बनवास, कैकेयी के किए पर पूरे समाज ही नहीं, उसके पुत्र तक ने जो कुछ कहा वह सब, मंदोदरी का बार-बार विलाप कर अपने पति को मनाना और पति द्वारा नारी में आठ अवगुण की प्रतिष्ठा तथा सुलोचना का सती होना उस समय की नारी की नारकीय स्थिति का वर्णन ही है। जिस राम राज्य की कल्पना तुलसी करते नहीं अघाते, उसमें नारी को कोई अधिकार नहीं है। सूर की गोपियाँ उद्धव को जो खरी-खोटी सुनाती हैं, उससे उन्हें मिलता क्या है? उनके प्रिय कृष्ण, जिनके लिए वे सब कुछ छोड़कर पीछे भागती थीं, वे तो बिना पूछे ही मथुरा चले गए। सूफियों के यहाँ भी नारी या तो माया है या परमात्मा, सामान्य नारी कहीं नहीं है।" ²⁹ इसलिए डा० सूरज पालीवाल निष्कर्ष निकालते हुए लिखते हैं कि "अतः यह कहना सही नहीं है कि भक्त कवियों के यहाँ नारी की स्थिति मध्य युग की नारी से अच्छी है। निर्गुणिए संतों, सूफियों से लेकर

सगुण भक्त कवियों तक ने नारी निंदा में कोई कमी नहीं छोड़ी है। मध्ययुगीन नारी-विरोधी समाज में ही मीराबाई अकेली ऐसी हैं, जिन्होंने सामन्ती रूढ़ियों और पारिवारिक मान्यताओं को तिलांजलि देकर स्वतंत्रता का वरण किया। यह अद्भुत साहस था। मारवाड़ जैसी विशाल रियासत में मेड़ता के जागीरदार की पुत्री और मेवाड़ के राज परिवार में ब्याही जाने वाली मीरा ने न मारवाड़ की झूठी प्रतिष्ठा की परवाह की और न मेवाड़ की छद्म नैतिकता की। वह नारी थी, परिवार की नैतिकता को अच्छी प्रकार समझती थी। वह जनती थी कि कम उम्र में विधवा हुई नारी की इन राज परिवारों में दासी से भी बुरी स्थिति होती है। शादी के सात-आठ वर्ष बाद ही अपने पति राजकुमार भोजराज के शव के साथ न तो वह सती हुई और न विधवाओं की तरह अन्त्यज बनकर रहने को तैयार। दोनों ही स्थितियाँ उसे नारी विरोधी लगती थीं।" ³⁰

डा० सूरज पालीवाल यदि थोड़ी सी भी गहराई में उतरते तो उन्हें मालूम पड़ता कि कबीर जिस स्त्री को माया कह रहे हैं, उस स्त्री के उस रूप के उच्च वर्गीय लोगों की धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था ने रचा है, जो घर परिवार, समाज और देश के लिए ही खतरनाक नहीं है बल्कि खुद स्त्री जाति के लिए भी खतरनाक है। स्त्री के गृहित रूप को रैदास कबीर की न तो पिछली पीढ़ी और न ही अगली पीढ़ी ने रचा है। इसे द्विजों की व्यवस्था ने रचा है। कबीर तो सिर्फ नारी के इस गृहित रूप से घर-परिवार एवं समाज को बचाना चाह रहे हैं। स्त्री को भोग की वस्तु बनाना और उसके कामिनी रूप को महिमामंडित करने का काम सामंती व्यवस्था ने किया जिसे कबीर निंदा और भर्त्सना का विषय बनाया। जो धर्म स्त्री को 'नरक का द्वार' मानता था, वही मंदिरों और मठों में स्त्री को 'स्वर्ग का द्वार' बना दिया। तंत्र सम्प्रदाय और उससे प्रभावित विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय, वैष्णव धर्म के लोग मंदिरों और मठों में स्वयं और उनके देवता यही कर रहे थे। सामंती काल में विवाह-संस्था की जगह जार-संस्था का ही बोल बाला था। जहाँ तक मीरा की क्रांतिकारियों का सवाल है तो मीरा को एक पति चाहिए था जो द्विजों के विवाह-कानूनों के तहत सम्भव नहीं था क्योंकि वहाँ न तो तलाक की व्यवस्था थी और न ही पुनर्विवाह की। मीरा को जो समाज में उपलब्ध नहीं हुआ, उसे उसने आध्यात्मिक स्तर पर कृष्ण को पति मान कर उपलब्ध करना चाहा। आज भी मीरा के आकांक्षित को उच्च वर्णीय समाज उपलब्ध कराने को तैयार नहीं दिखता है। मीरा की स्वतंत्रता विवाह-संस्था से परे की नहीं, उसके भीतर की है। समूचा हिन्दी साहित्य परकीया प्रेम से भरा पड़ा है। "हिन्दी साहित्य में राधावाद परकीया प्रेम का चरमोत्कर्ष है। पर यह परकीया प्रेम है क्या? बताया जाय कि पत्नी को घर में रख दूसरी स्त्री से प्रेम करने का नाम ही परकीया प्रेम है। अपने कबीर इस प्रेम को अनैतिक कहते हैं और अपने संविधान ने इसे दण्डनीय घोषित कर रखा है। अपनी व्याख्या में डा० धर्मवीर इसे "पत्नी का फजीता होना बताते हैं, जिसके माध्यम से पत्नी की गरिमा और मर्यादा गिराई जाती है।" वे इसके परिणाम के बारे में भी बताते हुए कहते हैं- "परकीया प्रेम में परिवार का ताना-बाना बिखरता है, जिसमें समाज कमजोर और देश गुलाम बनता है। इसलिए दृढ़ता से रखैल की नहीं, पत्नी की आवाज़ लगाई जाए।... कृष्ण भक्ति में पुरुषों के साथ महिलाएं भी लगी हुई हैं। कहते हैं, कृष्ण के प्रति प्रेम को अलौकिक भक्ति के रूप में मीरा चरम पर ले गई। गैर-दलित समीक्षक जो भी कहें, पर दलित विमर्श कृष्ण के प्रति मीरा के इस प्रेम को कोई अलौकिक प्रेम नहीं मानता। उसे वह एक हिन्दू विधवा का पति के लिए लौकिक गुहार मानता है। मीरा के इस प्रेम के बारे में डा० धर्मवीर ने लिखा- "वास्तव में, मीरा जोगन नहीं बल्कि उन्होंने जोगन का वेश धारण कर रखा है। वे इस जोगन के देश के भीतर एक पूरी औरत हैं। वे विधवा हैं। वे पुनः पत्नी और मां बनना चाहती हैं। कृष्ण भक्ति के नाम में विधवा मीरा की पीड़ा को छिपाया न जाए

बल्कि उजागर समझा जाए।" हिन्दू संस्कृति की बनावट ही ऐसी है कि एक विधवा स्त्री जोगन के देश में ही पति की मांग कर सकती है। इसके अलावा और कोई दूसरा रास्ता ही नहीं है उसके पास। जिस संस्कृति में विधवा विवाह पर रोक का विधान हो, जहां बिना दहेज के शादी न होती हो, जहां सती प्रथा का चलन हो और जहां स्त्रियों को तलाक और संन्यास लेने की मनाही हो, वहां पूछा जाए कि उस संस्कृति का मन्तव्य क्या है? क्या कहना चाहती है वह संस्कृति? कहना यह चाहती है कि उसके यहाँ एक स्त्री को आसानी से पति प्राप्त करने की छूट नहीं।³⁰ इस प्रकार मीरा जोगन बनकर भी और आध्यात्मिक क्षेत्र में पति के रूप में कृष्ण का वरण करके भी अपना प्राप्य नहीं पा सकीं, और आज भी ऐसी मीराएं जोगन बनने को अभिशप्त हैं। आखिरकार प्रेम भौतिक से ही आध्यात्मिक होता है। प्रेम के भौतिक मार्ग में सबसे बड़ी बाधा विवाह-कानून हैं जो स्त्री को तलाक और पुनर्विवाह का अधिकार नहीं देते, किंतु पुरुष को परकीया-प्रेम की अबाध स्वतंत्रता और स्वच्छदता प्रदान करते हैं। मीरा को घर इसलिए छोड़ना पड़ा क्योंकि वहाँ पुनर्विवाह करना सम्भव न था, इसलिए वह जोगन का वेश धारी, किन्तु वहाँ भी उन्हें जो स्वतंत्रता मिली, वह अधूरी मिली। पति की पुकार अध्यात्म जगत में गूँजती रही, लेकिन भौतिक क्षेत्र यानी सामाजिक कानूनों के क्षेत्र को नहीं पिघला सकी। मीराबाई की स्वतंत्रता को पुरुष आलोचकों की अपेक्षा स्त्री आलोचकों ने अधिक स्पष्ट और गहराई से समझा है, तभी तो **कुमकुम संगारी** के हवाले से अनामिका लिखती हैं कि, "मीरा जैसी भक्त कवियों की एक समस्या है पितृसत्तात्मक षडयंत्रों का एक घेरा तो वे लांघ लेती हैं, स्वयं वरा हो जाती हैं, पर पितृसत्तात्मकता का हल्का अभ्यांतरण उनमें भी होता है तभी तो वही दास्य भक्ति आरोपित कर देती हैं अपने कृष्ण पर भी, जिसे काटकर वे आगे बढ़ी थीं। जो शुरु में एक सखा की तरह वर्ग-जाति आदि कृत्रिम विभेदों के ऊपर उठे एक दोस्त की तरह उन्हें आकर्षित करता था उससे भी एक दोस्त की भाषा में वे बात नहीं कर पातीं। सिमोन द बोउआ और सार्त्र की दोस्ती मशहूर है, मगर हाल-फिलहाल में बोउआ जैसी स्त्री को अपने एक अनाम प्रेमी के नाम लिखे कुछ पत्र प्रकाशित हुए हैं, जिनकी भाषा दास्य-भक्ति भाषा है।"³¹

डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय' के दो अध्यायों (आठ और नौ) क्रमशः 'बालम आँव हमारे गेह रे....' कबीर का नारी रूप' और 'काम मिलावे काम कू.....' शाश्वत स्त्रीत्व और कबीर की प्रेम धारणा' में कबीर की स्त्री-दृष्टि को अंतर्विरोधी बताते हुए लिखा है कि " पितृसत्तात्मक समाज के संस्कारों और स्वयं अपनी प्रेम धारणा की फाँक से उत्पन्न सीमाओं के बावजूद कबीर और ऐसे अन्य साधकों द्वारा अर्जित अंतर्दृष्टि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि 'असल में स्त्री और पुरुष अलग-अलग तरह से प्रेम करते हैं' एक 'तरह' में 'प्रेम एडवेंचर है तो दूसरी में समूचा जीवन।"³² इस तरह 'संस्कारगत नारी-निंदा के बावजूद'³³ कबीर की प्रेम धारणा प्रशस्त है और आगे डा० राजेन्द्र कुमार के हवाले से कहते हैं कि मिलान कुदेरा की 'शाश्वत स्त्रीत्व की अवधारणा कबीर के काव्य में रूपक बनकर ही व्यापती है, वस्तुगत बन कर नहीं।³⁴ इस तरह डा० पुरुषोत्तम अग्रवाल अपने विश्लेषण में कबीर की प्रेम संवेदना और स्त्री-दृष्टि को लेकर एक 'रिडल' खड़ी करते नज़र आते हैं। कबीर की स्त्री दृष्टि को भौतिक स्तर पर 'संस्कारगत' और आध्यात्मिक स्तर पर 'शाश्वत' कह कर दो फाँक पैदा कर देते हैं। 'शाश्वत स्त्रीत्व' का भौतिक रूप क्या है, इसकी पहचान करने में उनकी दृष्टि असमर्थ हो जाती है। यह सतही आलोचना-दृष्टि का प्रमाण है। इसके विपरीत स्त्री आलोचकों की दृष्टि इस संदर्भ में आगे बढ़ी हुई नज़र आती है।

कुमकुम संगारी ने अपनी पुस्तक "मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति" में मीरा और कबीर की भक्ति के स्त्री स्वर

की व्यापक तुलना कर कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। कुमकुम संगारी के अनुसार "कबीर तीन प्रकार के स्त्रीत्व की चर्चा करते हैं— एक, 'स्त्री स्वभाव' में निहित निकृष्ट श्रेणी का स्त्रीत्व जो सभी आचार-संहिताओं में पहले ही निन्दित है, दो, 'स्त्री धर्म' की उच्च शिक्षाएं और तीन, भक्ति रचनाओं में उभरती 'उच्चतर' स्त्रीयता। उनकी रचनाएं विवाह-संहिता में वर्णित स्त्री धर्म के सभी आदर्शों का पूरा दोहन अपने कुछ उदात्त लक्ष्यों के लिए करती हैं। स्त्री धर्म के साथ तीसरी 'उच्चतर' स्त्रीयता यानी भक्ति मिला देने से, पहले 'निकृष्ट' प्रकार यानी स्त्री-स्वभाव का शोधन किया जा सकता है, साथ ही पितृसत्तात्मक नारी द्वेषी भावनाओं का झण्डा भी उँचा रखा जा सकता है जिसने स्त्रीत्व का यह निचला तबका उत्पन्न किया है, स्त्रियों के वर्गीकरण पर आधारित एक मूल्य-संरचना निर्मित करने के लिए स्त्री धर्म व 'उच्चतर' भक्ति मार्गी स्त्रीत्व दोनों ही स्त्री-स्वभाव का विरोध करती हैं। मीरा के उलट, स्त्रीत्व का कबीर का उच्चतर संस्करण विवाह संस्था से संगति बना लेता है।"³⁵ **कुमकुम संगारी** माया व स्त्री का समीकरण करते हुए लिखती हैं (लगभग सभी आलोचकों ने कबीर के यहाँ स्त्री व माया को एक-दूसरे का पर्याय बना दिया है) कि "कबीर रची कही जाने वाली रचनाओं को एक खण्ड में स्त्रियों को पुरुष की मुक्ति-मार्ग में रोड़ा बताया गया है— वह भौतिक जगत में माया का मूर्त रूप है और आध्यात्मिक जगत में माया का मानवीकरण। वर्गीकरण की दृष्टि से स्त्रियों के विभिन्न प्रकारों में भेद दर्शाने के लिए माया ही मूल आधार प्रदान करती है।"³⁶

माया एक कामोद्धत दुराचारिणी स्त्री का आदर्श रचती है जिसने विवाह संस्था का उल्लंघन किया है क्योंकि वह पितृसत्तात्मक नियमों से नियंत्रित नहीं है।³⁷ 'स्त्री व माया दोनों भक्ति और मुक्ति की राह में समान बाधाएं हैं। स्त्री-प्रेम में पड़ना सर्वनाश का कारण है।³⁸ 'कबीर की रचनाओं में पितृसत्तात्मक मूल्य परिवार की इकाई पर केन्द्रित हैं जो संतान की वैधता को सुनिश्चित करती है, स्त्री की कामेच्छा पर नियंत्रण रखती है और वैवाहिक कानूनों को निरंतरता देती है। इस सीमा का अतिक्रमण करने वाली स्त्रियाँ उसके अनुसार पथभ्रष्ट की श्रेणी में आती हैं।³⁹ 'स्त्रीधर्म' को आदर्श यानी पतिव्रता स्त्री, एक विशेष दिशा में नियंत्रित की गयी कामेच्छा का फल है।.... हालाँकि, व्यभिचार पुरुष व स्त्री दोनों के लिए ही निन्दनीय है.... पतिव्रता नारी सबकी प्रशंसा के योग्य है जो अन्य स्त्रियों से बिल्कुल अलग अपनी ही ज्योति में जगमगाती है।⁴⁰ 'कुछ रचनाओं में कबीर बिना किसी पूर्वाग्रह के स्त्री-स्वर में भीगे हैं। पत्नी/आत्मा/जीव ईश्वर से विलग होकर व्यथित और अपने प्रेम को परिपूर्णता तक पहुंचाने की अदम्य लालसा से भरी हुई है। 'बालम आव हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया दे रहे'। यहां स्त्री-स्वर स्वामी की अधीनता, कामेच्छा और विरह से आप्लावित है। कबीर में स्त्री भक्ति स्वर एक 'अविभाजित' स्व दर्शाता है। इसमें प्रेम का चरम आनंद ईश्वर से बिछोह या मानव जाति की सार्वभौम पीड़ा से सीधे जुड़ता है।⁴¹ कबीर के पास पितृसत्तात्मक मूल्यों की गहन जाँच-पड़ताल के लिए एक शक्तिशाली सैद्धांतिक सामग्री है। किन्तु यह निष्कर्ष निकाल लेना उचित नहीं होगा कि कबीर की रचनाएं किन्हीं अर्थों में अधिक प्रगतिशील हैं तथा पितृसत्तात्मक मूल्यों का उनमें पाया जाना, समय के साथ हुआ अनायास परिवर्तन मात्र है। यद्यपि यह सम्भव है कि कबीर के कवित्त में यह विरोधाभास उसकी अपनी जिंदगी में विवाह और ब्रह्मचर्य के बीच द्वन्द्व का प्रतिबिम्ब हो अथवा दूसरे पंथों के वाद-विवाद का हिस्सा, किन्तु यह तो सत्य है कि पितृसत्तात्मक मूल्य उसकी भक्ति के ताने-बाने में सक्रिय रूप से उपस्थित है।⁴²

'कबीर के रचना संसार में स्त्रीत्व का एक लक्ष्य यदि रुढ़िगत धर्म से दूरी बनाना है, तो यह लक्ष्य पितृसत्तात्मक मूल्य-संरचना को यथावत् बनाए रखने की कीमत पर हासिल हुआ है। यह नीति-संहिता बनाने का एक अनुपूरक मार्ग हो गया

है।⁴³ 'मीरा सती होने के विरुद्ध हैं (सती न होस्या)⁴⁴ तो कबीर स्वयं को स्त्री-रूप में प्रस्तुत करते हैं। भनित घोषित करते हैं कि वह (कबीर) प्रसन्नता से चिता सजाकर सच्चे पति से मिलने चली जाएगी।⁴⁵ किन्तु मीरा कभी भी कबीर के देह-समाप्ति के निर्णय तक नहीं पहुंच पातीं।⁴⁶ और अंततः **कुमकुम संगारी** एक सवाल भी छोड़ जाती हैं पाठकों के लिए भी और खुद के लिए भी : "यहां यह पूछना अधिक प्रासंगिक होगा कि कबीर का रचना-कर्म किस पितृसत्ता का प्रतिनिधि बनकर आता है? निश्चित है व्यक्ति के सिर्फ निजी मत-अभिमत के स्तर पर तो नहीं। मौखिक परम्पराओं में यह तय करना मुश्किल है कि पितृसत्ता के कौन-से आदर्श और विरोधाभास कवि के अपने हैं और कौन से प्रचलित अर्थों-व्याख्याओं में से और अथवा प्रचलित धर्म में भक्ति को शामिल कर लिये जाने के कारण आ गए हैं या फिर कौन से साहित्य-सभाओं में उन रचनाओं की पुनरावृत्ति से। कबीर के रचना-संग्रह का इस दृष्टि से अन्वेषण इस परस्पर काटती रेखाओं को सुस्पष्ट करने में सहायक होगा।"⁴⁷

मीरा व कबीर की भक्ति के स्त्री-स्वर की तुलना करते हुए **कुमकुम संगारी** ने कबीर की स्त्री-दृष्टि को पहचानने में काफी हद तक अपनी वस्तुनिष्ठ और गम्भीर दृष्टि का परिचय दिया है। लेकिन इस विषय पर अन्य आलोचकों की तरह उन्होंने भी कबीर के नाम प्रचलित से प्रक्षिप्त रचनाओं के आधार पर कबीर की स्त्री-दृष्टि के पहचानने और निष्कर्ष निकालने की कोशिश की है। हालाँकि कबीर के नाम से प्रचलित रचनाओं के परखे जाने की जरूरत महसूस की है। विभिन्न संस्थागत धर्मों और उसके आचार्यों ने विशेष रूप से वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने कबीर को आत्मसात करने के लिए कबीर की रचनाओं से छेड़छाड़ कर उनमें प्रक्षिप्तों का प्रवेश कराया। कबीर संन्यासी नहीं, गृहस्थ थे। उनके यहाँ भौतिक व परमार्थिक सत्य के बीच द्वैत भी नहीं है। वे स्त्रियों के बारे में संन्यासियों या कामियों की तरह नहीं सोच सकते थे। उनके समय में सामंती समाज-व्यवस्था और धर्मतंत्र ने मिल कर स्त्री का जो मायावी और कामिनी रूप गढ़ा वह घर परिवार और समाज के लिए अत्यंत खतरनाक था। कबीर देख रहे थे कि मध्यकाल में स्त्री सामाजिक स्तर पर ब्राह्मण पितृसत्तात्मक कानूनों से बंधी हुई है तो धर्मतंत्र ने भी उसे शोषण की वस्तु बना रखा है। धर्म व अध्यात्म के लिए स्त्री की यौनता भले ही खतरनाक कही गई हो और स्त्री को 'नरक का द्वार' कहा गया हो, लेकिन धर्म की वैदिक, बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव, तंत्र आदि की परम्परा ने स्त्री को मठों और मंदिरों में 'स्वर्ग की द्वार' ही बना दी है। मध्यकाल के राजतंत्र ने स्त्री का शोषण करने वाली और उसे भोग की वस्तु बनाने वाली तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक संरचना को संरक्षण प्रदान कर रखा था। इस प्रकार मध्य काल की समाज, धर्म और राजतंत्र की संस्थाओं के चंगुल में फंसी स्त्री पराधीन थी। ऐसे में 'विवाह संस्था' निर्मूल और निष्प्रभावी हो गयी थी। कबीर के समक्ष निर्मूल और कमज़ोर हो चुकी 'विवाह-संस्था' को पुनर्स्थापित करने का सवाल था। कबीर वैदिक काल से चली आ रही जाकरम की परम्परा को अपने समय में भी देखा कि कैसे वैदिक-पौराणिक परम्परा के देवी-देवता इसमें रत दिखाई देते हैं। तंत्र सम्प्रदाय ने अपने अन्य समकालीन विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों, शाक्त, शैव, बौद्ध, जैन, वैष्णव आदि को संक्रमित कर स्त्री के शोषण का तंत्र ही रच दिया था। पितृसत्तात्मक कानूनों की संहिता का निर्माण कबीर और उनकी किसी अगली या पिछली पीढ़ी ने नहीं किया है। कबीर की स्त्री-दृष्टि और चिन्तन को पितृसत्तात्मक कानूनों की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता है। अतः कबीर स्त्री के माया और कामिनी रूप की निंदा करते हैं। स्त्री के भोग्या रूप की भर्त्सना और उसके पतिव्रता रूप की प्रशंसा की है। कबीर जब स्त्री की निंदा करते हैं तो उनका उद्देश्य स्त्री के सामंती रूप की निंदा करना होता है। स्त्री के मायावी और भोगवादी रूप तथा स्त्री-स्वभाव की रहस्यवादिता का निर्माण समाज संहिता एवं

धर्म-संहिता रचने वाले आचार्यों ने की थी, कबीर ने नहीं। कबीर तो स्त्री के इन रूपों को सिर से नकार रहे थे। आलोचक कँवल भारती के अनुसार "कबीर की सबसे बड़ी क्रांति यह थी कि उन्होंने (मध्यकाल) में कामी पुरुष और कामी स्त्री को रंगे हाथों पकड़ा था। उन्होंने वे वैष्णव, शैव और शाक्त पकड़े थे, जो पर स्त्रियों के साथ व्यभिचार में डूबे हुए थे। विवाह-बंधन इतने शिथिल हो गये थे कि व्यभिचारी पुरुषों और व्यभिचारिणी स्त्रियों से समाज अड़ा पड़ा था। इस स्वच्छंद यौनाचार ने समाज के सम्पूर्ण नैतिक ढाँचे को ध्वस्त कर दिया था। इसके कारण घर-घर में झगड़े मचे हुए थे। वैश्यावृत्ति जायज बनी हुई थी। धर्म के नाम पर मंदिरों में देवदासियाँ थीं, जो सामंतों, पुरोहितों और भद्र लोगों का मनोरंजन करती थीं जिनमें नृत्य के साथ-साथ यौनाचार भी शामिल था। कबीर ने जाकरम के खिलाफ ज़बरदस्त आवाज़ उठाई थी। उन्होंने विवाह संस्था को मजबूत करने पर बल दिया और उन कामी स्त्री-पुरुषों की निंदा की, जो अपने निर्लज्ज जाकर-कर्म से परिवार को तोड़ रहे थे।..... कबीर की लड़ाई स्त्री के विरुद्ध नहीं है..... स्त्री को नरक का द्वार कहने वाले शंकराचार्य की शब्दावली में कबीर स्त्री निंदा नहीं कर संकेत थे। कबीर की अपनी शब्दावली की सखियाँ ये हैं :

भगति विगारी कामियाँ, इन्द्री कैरे स्वादि ।
हीरा खोया हाथि थैं, जनम गँवाया वादि ।।
कबीर कहता जात हौं, चेत नहीं गँवार ।
वैरागी गिरही कहा, काँमी वार न पार ।।⁴⁸

कबीर ने पौराणिक अवतारों और ब्रह्मा, विष्णु, महेश को निष्कलुष नहीं, कलंकित माना है। वे बेहद दर्ज़ के चरित्रहीन और लम्पट थे, जिसे उन्होंने अपने पदों में अभिव्यक्त किया है :

ब्रह्मा विष्णु महेशर कहिए, इन सिर लागी काई ।
इनहिं भरोसे मत कोई रहियो, इनहूँ मुक्ति न पाई ।।

देव चरित्र सुनहु रे भाई, सो तो ब्रह्मा धिया नसाई ।
ऊ जे सुनी मंदोदरी तारा, तिन घर जेठ सदा लगवारा ।
सुरपति जाय अहीलहिं छरी, सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी ।
कहै कबीर हरि के गुनगाया, कुन्ती करन कुँवारहिं जाया ।।⁴⁹

सूर के कृष्ण को कबीर ने अपने एक पद में "काम कौ कीरा" कहा है।⁵⁰

डा० धर्मवीर कबीर की स्त्री-दृष्टि को समझने के लिए कबीर को औरस रचनाओं से प्रक्षिप्त रचनाओं को हटाना अनिवार्य मानते हैं। यह होगा कैसे? उनके अनुसार इसके लिए कबीर की मूल दार्शनिक अवधारणा/चेतना के अनुरूप उनके काव्य का पुनर्पाठ करना होगा। कुछ कुछ ऐसी ही जरूरत **कुमकुम संगारी** भी 'कबीर-रचित' कही जाने वाली प्रक्षिप्त रचनाओं के बारे में महसूस कर रही हैं। **डा० धर्मवीर** का आग्रह है कि "कबीर को कबीर रहने दो-उन्हें बौद्ध भिक्षुओं, जैन मुनियों और हिन्दू संन्यासियों की तरह मत समझो- उनसे तुलना मत करो। पुरुषोत्तम अग्रवाल से इस पुस्तक (अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय) में सबसे बड़ी गलती क्या हुई है? यह कबीर के स्त्री-दर्शन को लेकर हुई है। प्रक्षिप्त किसी भी विषय को लेकर बर्दाश्त से बाहर की चीज है, पर स्त्री के बारे में कबीर के नाम से प्रक्षिप्त रचने की वजह से जैसे कहर ही बरपा है। जो कबीर ने नहीं कहा, वह कबीर के नाम से कहा गया प्रचारित कर दिया गया- और, यूँ कबीर को बदनाम किया जा रहा है। चूँकि, कबीर घर-गृहस्थी के आदमी थे, इसलिए वे स्त्री के बारे में, एक संन्यासी की तरह नहीं सोच और बोल सकते थे, और चूँकि, कबीर, बाल-बच्चेदार व्यक्ति थे, इसलिए वे एक जागरूक पुरुष की तरह भी नहीं सोच और बोल सकते थे। कबीर

जैसे जिम्मेदार आदमी ऐल-फैल की कविताएं क्यों लिखेंगे? इसलिए जो रचनाएं एक संन्यासी ही लिख सकते हैं, वे कबीर की नहीं हैं, तथा जो रचनाएं कामी पुरुष लिखा करते हैं, वे भी कबीर की नहीं हैं। घर-गृहस्थी को चलाने में जो गड़बड़ियाँ होती हैं, उन्हें कबीर ठीक करने में लगे हुए हैं। संन्यासियों और कामियों के द्वारा रचे गए प्रक्षिप्तों को न निकालने की वजह से कई लेखिकाएं कबीर के बारे में गलतफहमियों की शिकार हुई हैं। इनमें अंतिम नाम गीताश्री का है, जिनका लेख 'कबीर और प्रेम की पाठशाला में' अंतर्विरोधी पाठ' मासिक पत्रिका 'हंस' (मई, 2010) में छपा है।⁵¹ **कुमकुम संगारी** भी कुछ कुछ ऐसी ही गलतफहमी की शिकार हुई हैं जहां वह मान लेती हैं कि 'पितृसत्ता के आदर्शों और विवाह व दासत्व सरीखी संस्थाओं का प्रतिपादन मीरा ने उनकी लौकिक सत्ता को चुनौती देने के लिए किया और कबीर ने विवाह आदि संस्था के पक्ष में खड़े होकर पितृसत्तात्मक आदर्शों और मूल्यों को पुनर्स्थापित किया।' हालाँकि उनकी पुस्तक (मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति ही) की भूमिका में **अनामिका** स्पष्ट लिखती हैं कि "पितृसत्तात्मकता और राजसत्ता के समस्त निषेध के बावजूद मीरा बोलती हैं दास्य-भक्ति की भाषा ही। वे एक दोस्त की भाषा तो नहीं बोलतीं और कुमकुम संगारी की तरह औषधि विज्ञान के शब्द उधार लेकर कहें तो उनके समस्त रूपक 'लो रिस्क मेटाफर्स' ही हैं, यह एक तरह की समझदारी है जो बचाव-वृत्ति से आती है और इसका स्पष्ट सम्बंध 'सविनय अवज्ञा' की भाषिक तकनीक से बनता है। रहना तो प्रतिरोधों के बीच ही है, वहीं रह कर अपनी राह बनानी है और एक विधा के रूप में कविता सात पर्दों के पीछे से आपरेट करने की अभ्यासी रही है। इससे भी मीरा को चिक की एक ओट सी मिली। पर वहां से भी उन्होंने स्फुलिंग तो बिखरे ही।"⁵² पुस्तक के प्लैप पर एक टिप्पणी दर्ज है— "दरअसल वंश, जाति और सबसे अधिक जेंडर की पितृसत्तात्मक अवधारणाओं को सबसे सफल कुटनीतिक आघात भक्ति धारा ने ही पहुंचाया है क्योंकि भक्ति की जमीन पर स्त्रीत्व एक ऐसा अहं रहित माध्यम बन कर सामने आया जिसे पहली बार पुरुष भक्तों ने भी स्वयं की खोज के एक रास्ते के रूप में अपनाया। पितृसत्ता के ढांचे में रहते हुए व उसी के उपकरणों, भाषा और सिद्धांत का प्रयोग करके विवाह तथा ईश्वर-राजा-पति-स्वामी के भावविम्बों को परिवर्तित कर पितृसत्ता के ही विरोध में खड़ी कर देती हैं, चाहे सीमित रूप में ही।"⁵³ जिस 'पितृसत्ता' की बात बार-बार की जा रही है, कबीर ने नहीं रचा और न ही उनका इस परम्परा से कुछ लेना-देना है। कबीर का सम्बंध वैदिक परम्परा से नहीं आजीवक परम्परा से है। **डा० धर्मवीर** के अनुसार "असल में, स्त्री को लेकर कबीर की आजीवक परम्परा से प्रक्षिप्त के द्वारा जो छेड़छाड़ की गई है, वह बहुत नुकसानदायक रही है। कबीर के नारी से सम्बंध के बारे में अपनी ओर से अलग से कुछ जोड़ना ही गलत था। समझ में नहीं आता था तो अलग हट जाना चाहिए था, उस सम्बंध को खराब तो न करते। मकखलि गोसाल स्त्री से अपने सम्बंध बनाने की वजह से महावीर से अलग हुए थे। उन्होंने स्त्री के बिना रहना नहीं चाहा। कबीर उसी परम्परा के गृहस्थ थे।"⁵⁴ गृहस्थ कबीर का स्त्री-चिन्तन वही नहीं होगा जो घर से भागे हुए संन्यासी या किसी कामी का होगा। संन्यासी या कामी की स्त्री के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं होती, लेकिन गृहस्थ इस जिम्मेदारी से भाग नहीं सकता है। इसलिए **डा० धर्मवीर** के अनुसार, "कबीर आजीवक थे, इसलिए लौकिक थे, तथा संन्यासी और कामी नहीं थे। प्रेम और विवाह के मामले में वे अपनी गारण्टी देते हैं, और दूसरे से गारण्टी लेते हैं— "नाँ हों देखो और कूँ, नाँ तुझ देखन देऊँ।" (डा० युगेश्वर-कबीर समग्र, प्रथम खण्ड, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1995, पृ० 253)⁵⁵ कबीर के यहाँ नर हो या नारी, दोनों के लिए यौन-निष्ठा की लौकिक मर्यादाएं लागू हैं। कबीर को कवि और नारी से, दोनों से लौकिक मर्यादा की यौन-निष्ठा

चाहिए ही। कबीर के यहाँ की आजीवक परम्परा जार-विरोधी परम्परा है, जबकि वैदिक परम्परा जार के समर्थन की परम्परा है। **हरि मोहन झा** ने अपनी पुस्तक 'खट्टर काका' में बताया है कि वेद में हजार बार जार की चर्चा आई है जिसमें पति से अधिक जार का ही बाजार गर्म है। **ऋग्वेद** (9-56-3) में आया है— "अभित्त्वा योषणो दश, जारं न कन्या भूषत, मृज्यसे सोम सातये— अर्थात् कामातुर स्त्री अपने जार को बुलाने के लिए इसी प्रकार अंगुलियों से इशारा करती है।" **ऋग्वेद** (9-10-14) में आया है— 'सरज्जारो न योषणां, वरो न योनि मासदम— अर्थात् वह रस उसी प्रकार कलश में जा रहा है, जैसे युवतियों में जार का।' **ऋग्वेद** (9-32-5) में यह भी आया है— 'अभिगावो अनूषत, योषा जारमिव प्रियम, अगन्नाजिं यथाहितम्— अर्थात् हे सोम, मैं उसी प्रकार आपको ग्रहण करता हूँ, जैसे स्त्री अपने जार को।' यही जारों की वैदिक-पौराणिक संस्कृति है। इसी वेद के खिलाफ कबीर गरजे हैं।"⁵⁶

डा० धर्मवीर के अनुसार, "पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपनी पुस्तक ('अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय') में कबीर के नारी चिन्तन पर बहस की है। कभी वे 'बालम आव हमारे गेह रे.....' में 'कबीर का नारी रूप' देखा है, तो कभी 'काम मिलाने रामकूँ...' में 'शाश्वत स्त्रीत्व और कबीर की प्रेमधारणा' पर विचार करते हैं। सच बात यह है कि अन्य पक्षों की तरह, उन से कबीर का यह पक्ष भी नहीं सध सका। सधता तब जब ईमानदार होते। जब अपनी बात कबीर पर थोपनी है और कबीर से कुछ सीखता नहीं है तो ये ही ऊती के बजने थे। कबीर का साहित्य 'नो अउल्टी जोन' का साहित्य है। कबीर अपनी वाणी में हमेशा मोरल की बात आगे रखते हैं। उनके यहाँ 'धर्मतर अध्यात्म' के आनंद के नाम से किसी 'मोरलेतर अध्यात्म' के फजीते का अस्तित्व नहीं है। मोरल के बिना यह धर्मतर अध्यात्म जंगल राज, कवि की स्वतंत्रता के नाम पर पुनः असभ्यता और बर्बरता की ओर लौटने का चिन्तन है। कबीर की कविता इसकी अनुमति किसी को नहीं देती। कबीर ऐसी स्वतंत्रता न खुद लेते हैं और न किसी को देते हैं— "नाँ हों देखो और कूँ, नाँ तुझ देखन देऊँ।" इसी एक पंक्ति में कबीर का पूरा स्त्री-दर्शन आ ठहरता है। इसलिए, कबीर के नारी-विरोध के झूठे लांछन से बचाने के लिए ज़रूरी है कि समीक्षक को अपनी दृष्टि सम्यक् रखनी चाहिए। यह विचार यहाँ तक विस्तार पाता है कि ईश्वर के बारे में चिन्तन की यह खेमेबाजी ठीक नहीं है कि वह निर्गुण है कि सगुण, निराकार है या साकार, बल्कि कबीर का ईश्वर इस रूप में परिभाषित होता है कि वह सदाचारी के पक्ष में है और जारकर्मी के खिलाफ है। इस बाँट में पुरुष और स्त्री में कोई फर्क नहीं रखा गया....।"⁵⁷ कबीर गृहस्थ और सांसारिक थे। उन्होंने काम की नहीं, जार-कर्म और जार-संस्कृति की भर्त्सना की है। चाहे सामाजिक क्षेत्र हो या आध्यात्मिक, सदाचार की प्रतिष्ठा करना ही उनका धर्म है। कबीर संन्यासी नहीं थे। उन्होंने गृहस्थ का पक्ष लेते हुए संन्यास की मजाक फोड़ी है। उन्होंने यहाँ तक कहा है— "काम जराय जोगी होय गैले हिजरा" तब, कबीर उसी पत्नी की निन्दा करते हैं जिसके मन में सदा जार बसा रहता है। इसमें कबीर स्त्री विरोधी कैसे हो सकते हैं?⁵⁸ कबीर ही नहीं, कबीर की परम्परा में आगे आने वाले फूले और डा० अम्बेडकर भी जार परम्परा के विरोधी के रूप में सामने आते हैं। **ज्योतिबा फूले** ने अपने ईश्वर को कृष्ण से एकदम अलग और भिन्न माना है। उन्होंने अपने ईश्वर के बारे में लिखा है— "हम सभी का निर्माणकर्ता ऐसा नहीं है। वह आर्य ब्राह्मणों के काल्पनिक कृष्ण की तरह दूध-मकखन की चोरी-चपारी करके सोलह सहस्र एक सौ आठ नारियों के साथ-साथ ग्वालों की बहकाई राधा के संग विषयासक्त होकर उनके विस्तर पर लुढ़कने वाला नहीं है" **डा० अम्बेडकर** ने भी अपने लेख 'द रिडल ऑफ रामा एण्ड कृष्णा' में राधा और कृष्ण के सम्बंध की निंदा की है।⁵⁹

कबीर विवाह-संस्था के समर्थक हैं, जार-संस्था के नहीं। विवाह संस्था कबीर के नज़रिए से पितृसत्ता की पर्याय नहीं, जार-संस्था की विलोम है। कबीर विवाह संस्था की पुनर्प्रतिष्ठा करना चाहते हैं जिसे सामंती समाज, धर्म एवं राजतंत्र ने कमजोर का रखा है। उनके लिए विवाह संस्था के परे जाना अराजक सामंती व्यवस्था में जाना है। कबीर यह कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे। कबीर के यहाँ पति-पत्नी के प्रेम के आगे तमाम रास लीलाएं व्यर्थ की चीजें थीं। कबीर विवाह के भीतर ही स्त्री-पुरुष के सच्चे सौन्दर्य का दर्शन करते हैं। **डा० धर्मवीर** के अनुसार— “...ऐसा मुमुक्षु संन्यासी या बौद्ध और जैन भिक्षु (जो घर से भागे हुए और सामाजिक मृत्यु का रास्ता वरण किए हुए हैं) नारी के सौन्दर्य की प्रशंसा कैसे कर पाएगा? यदि वह संन्यास का रास्ता नहीं अपनाया है तो उसे परकीया की खोज करनी पड़ेगी।... लेकिन भारत में नारी-सौन्दर्य कबीर के आजीवकवाद में पूरी तरह सुरक्षित और सजता है जिसमें न उससे मुंह फेर का संन्यास और भिक्षुपन है और परकीया सम्बन्धों का डम्बीवाद और राधावाद। यहाँ 'सुन्दर' की प्रतिष्ठा के लिए नैतिकता को भी कोसना नहीं पड़ता। सौन्दर्य पत्नी का शील बन जाता है। उसमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिलता नहीं बल्कि पति-पत्नी के बीच प्रेम की तीव्रता बढ़ती है।”⁶⁰

इस प्रकार कबीर मध्यकाल के सामंती समय में विवाह-संस्था जो लगभग समाप्त प्राय हो चली थी, को बचाने का ऐतिहासिक काम किया। कबीर के यहाँ और उनकी परम्परा में विवाह-संस्था पितृसत्तात्मक मूल्यों की व्यवस्था नहीं है। पितृसत्ता की रचना कबीर या उनकी परम्परा के आगे-पीछे के लोगों ने किया भी नहीं है। सामंती व्यवस्था और उसकी संस्थाओं (धर्म, समाज और राजतंत्र आदि) ने स्त्री को पराधीन कर रखा था। स्त्री का वस्तुकरण कर दिया गया था और वह मात्र भोग्य। वस्तु थी। स्त्री को 'माया' रूप में या 'स्त्री स्वभाव' की रहस्यमयता को गढ़ कर स्त्री को घर-परिवार से काटकर उपभोग की सामग्री या वेश्या की तरह बना दी गई थी। कबीर ने विवाह-संस्था के और पति-पत्नी के प्रेम के पक्ष में खड़े होकर न केवल टूट रहे घर-परिवारों और समाज को बचाया बल्कि प्रेम के भोगवादी रूप की जगह सच्चे मानवीय और नैतिक प्रेम और उसके सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की। कबीर के उलट परम्परा शुरू से ही विवाह-संस्था को कमजोर करती आई है। वहाँ 'स्वकीया' प्रेम के बजाय 'परकीया प्रेम' की भरपूर प्रतिष्ठा हुई है। स्त्री-मुक्ति के नाम पर विवाह-संस्था को पितृसत्ता की औज़ार मान कर उसे खत्म करने और इतिहास में पीछे जाकर मातृसत्ता की ओर लौटाने की ध्वनियाँ सुनी जा रही हैं, जब कि न इतिहास की धुरी को पीछे घुमाया जा सकता है और न उससे पलायन करके विवाह संस्था को नष्ट कर अराजक स्थिति में जाया जा सकता है। विवाह संस्था पितृसत्ता क्यों है क्योंकि वहाँ वह लोकतांत्रिक नहीं है अर्थात् वहाँ तलाक और पुनर्विवाह की स्वतंत्रता के सिद्धांत लागू नहीं होते हैं। कबीर के यहाँ विवाह, पितृसत्ता की व्यवस्था नहीं क्योंकि वहाँ तलाक और पुनर्विवाह के कानून लागू होते हैं। आज मातृसत्ता और पितृसत्ता दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की जरूरत है, साथ ही विवाह संस्था को तर्कसंगत और लोकतांत्रिक रूप देने की। रैडिकल स्त्रीवाद के भीतर भी ऐसी दृष्टि विकसित हो रही है। **मृदुला गर्ग** के उपन्यास 'मिलजुल मन' और **अनामिका** की स्त्री-चिन्तन की पुस्तक 'मौसम बदलने की आहट' में स्त्री-पुरुष के मध्य सामंजस्य की जरूरत महसूस की गई है। आज के राष्ट्रवादी अभियान जहाँ वर्णसत्ता और पितृसत्ता दोनों की पुनर्स्थापना का जोर है तथा बाज़ारवाद एवं उपभोक्तावाद की आकर्षक दुनिया की माया में स्त्री को फिर से 'माया' रूप में परिभाषित किए जाने या 'स्त्री स्वभाव' की रहस्यवादिता के गढ़े जाने की सम्भावनाएं हों और विवाह-संस्था को हाशिए में डालने की पुरजोर कोशिश जारी हों, ऐसे परिवेश और समाज में कबीर की स्त्री-दृष्टि की प्रासंगिकता अक्षुण्ण है।

संदर्भ

1. इरफ़ान हबीब. भारतीय इतिहास में मध्यकाल (मध्यकालीन-भारतीय इतिहास में स्त्री) तीसरा संस्करण, 2013, ग्रंथ शिल्पी (इण्डिया) प्रा०लि० दिल्ली, पृ०
2. प्रो० कुंवर पाल सिंह. भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति (सम्पादक) में संकलित सूरज पालीवाल का लेख 'भक्ति काव्य में नारी की स्थिति : मीरा के विशेष संदर्भ में' पृ० 295, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली तृतीय संस्करण, 2008
3. वही, पृ० 296
4. डा० नगेन्द्र- सं० हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 80
5. अबुल फज़ल-आईने अक़बरी (जिल्द-एक) पृष्ठ 277
6. प्रो० कुंवर पाल सिंह- सं० 'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति' में संकलित सूरज पालीवाल का लेख 'भक्ति काव्य में नारी की स्थिति : मीरा के विशेष संदर्भ में' पृ० 296-97 वाणी प्रकाशन दिल्ली, तृतीय संस्करण, 2008
7. वही, पृष्ठ 297
8. शहनाज़ बानो - भक्ति काव्य में पितृसत्ता और स्त्री विमर्श, पृ० 43, अनिरुद्ध बुक्स, आज़ादपुर, दिल्ली-110033, संस्करण, 2010
9. इरफ़ान हबीब- भारतीय इतिहास में मध्यकाल (मध्यकालीन भारतीय इतिहास में स्त्री) पृ० 34-35 ग्रंथ शिल्पी (इण्डिया) प्रा०लि० दिल्ली 110092, तीसरा संस्करण, 2013
10. सुवीरा जायसवाल - दलित अस्मित और एजेण्डा 'जाति विनाश' का, तद्भव, (सं० अखिलेश) लखनऊ, अंक 15, जनवरी, 2007, पृ० 37-38
11. इरफ़ान हबीब-भारतीय इतिहास में मध्यकाल (मध्यकालीन भारतीय इतिहास में स्त्री), पृ० 35, ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2013
12. वही, पृ० 35-40
13. द्विजेन्दु नारायण सा- सं० 'भारतीय सामंतवाद : राज्य, समाज और विचारधारा' में संकलित रामशरण शर्मा का लेख "तंत्र सम्प्रदाय की समाजार्थिक पृष्ठभूमि", पृ० 440-65, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000
14. प्रियदर्शिनी विजयश्री- देवदासी या धार्मिक वेश्या? एक पुनर्विचार, अनुवाद विजय कुमार झा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
15. सूरज पालीवाल - भक्ति काव्य में नारी की स्थिति : मीरा के विशेष संदर्भ में (लेख) प्रो० कुंवर पाल सिंह सम्पादित पुस्तक 'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति में संकलित, पृ० 297-99 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2008
16. इरफ़ान हबीब-भारतीय इतिहास में मध्यकाल (मध्यकालीन भारतीय इतिहास में स्त्री) पृष्ठ 40, ग्रंथशिल्पी (इंडिया) प्रा०लि०, दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2013
17. मैनेजर पांडेय- कबीर का आत्मसातीकरण, पृ० 5, बहुवचन, अंक 24, जनवरी-मार्च 2010, सम्पादक राजेन्द्र कुमार, हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) का प्रकाशन।
18. सतीशचंद्र- मध्यकालीन भारत में इतिहास-लेखन, धर्म और राज्य का स्वरूप, अनुवादक एम०ए० खान 'शाहिव' (उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि), पृ० 86 ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, प्रथम हिन्दी संस्करण, 2009
19. वही, पृ० 97
20. मैनेजर पांडेय- भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ० 26, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 1993
21. वही, पृ० 26
22. वही, पृ० 26
23. वही, पृ० 26

24. वही, पृ० 26
25. वही, पृ० 26-27
26. वही, पृ० 27
27. सूरज पालीवाल- 'भक्तिकाव्य में नारी की स्थिति : मीरा के विशेष संदर्भ में (लेख) प्रो० कुंवर पाल सिंह सम्पादित पुस्तक 'भक्ति आंदोलन : इतिहास और संस्कृति' में संकलित, पृ० 298-99 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2008
28. वही, पृ० 299
29. वही, पृ० 299
30. डा० दिनेश राम- दलित साहित्य और डा० धर्मवीर का स्त्री-चिन्तन, डा० श्यौराज सिंह बेचैन सम्पादित पुस्तक 'सामाजिक न्याय और दलित साहित्य' में संकलित, पृ० 163, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014
31. कुमकुम संगारी- 'मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति' में की 'मीरा का स्त्रीवादी रिसेप्शन : महादेवी से कुमकुम संगारी तक' शीर्षक भूमिका से उद्धृत, पृ० 40, अनुवाद अनुपमा गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002
32. पुरुषोत्तम अग्रवाल- अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय, पृ० 386, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009
33. वही, पृ० 369
34. वही, पृ० 299 386
35. कुमकुम संगारी मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति (कबीर, पितृसत्ता के आदर्श और स्त्री भक्ति स्वर) अनुवाद अनुपमा गुप्ता, भूमिका अनामिका, पृ० 94, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
36. वही, पृ० 94
37. वही, पृ० 95
38. वही, पृ० 97
39. वही, पृ० 98
40. वही, पृ० 99
41. वही, पृ० 100-101
42. वही, पृ० 105
43. वही, पृ० 106
44. वही, पृ० 118
45. वही, पृ० 120
46. वही, पृ० 123
47. वही, पृ० 106
48. कैवल भारती- आजीवक परम्परा और कबीर, पृ० 112-117, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
49. वही, पृ० 107-108
50. डा० राजदेव सिंह- कबीर आधुनिक संदर्भ में, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-2, संस्करण, 1999, पृ० 187
51. डा० धर्मवीर- कबीर : खसम खुशी क्यों होय? पृ० 279-80, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
52. अनामिका- मीरा का स्त्रीवादी रिसेप्शन : महादेवी से कुमकुम संगारी तक, (भूमिका कुमकुम संगारी की पुस्तक, 'मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ० 40
53. वही, पुस्तक का फ्लैप (बायाँ)
54. डा० धर्मवीर - कबीर : खसम खुशी क्यों होय? पृष्ठ 279, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
55. वही, पृ० 282
56. वही, पृ० 285 (एस०के० पंजम-शूद्रों का प्राचीनतम इतिहास, दिव्यांश पब्लिकेशन्स, टिकैतराम कालोनी, लखनऊ (उ०प्र०), प्रथम संस्करण, 2010, पृ० 218 से उद्धृत)।
57. डा० धर्मवीर-कबीर : खसम खुशी क्यों होय? पृ० 285-86, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
58. वही, पृ० 291
59. वही, पृ० 263-64
60. डा० धर्मवीर - दलित चिन्तन का विकास-अभिषप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर (डा० नामवर सिंह का दुख) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृ० 50